eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

कबीर दास का शिल्प चिंतन

[1]डॉ पूजा चौहान
[1]प्रवक्ता, श्री साईं बाबा इंटर कॉलेज, अमरोहा

Received: 17 Dec 2023, Accepted: 15 January 2024, Published online: 01 February 2024

Abstract

कबीर उस हिन्दी–संस्कृति के सदस्य हैं जो नकार, विरोध के साथ अशिक्षित जनों की भाषा के बीच अपना साहित्यक इतिहास बनाती है। आठवीं शताब्दी में मूर्ति, मंदिर, शास्त्र, संस्कृति, मठ, छत्र, मुकुट, माला और तिलक, शिक्षा और यज्ञोपवीत, जाति, वर्ण को अस्वीकार करने वाली सिद्धधर्या विकसित हुई। कला की चरम परिणति का नाम अभिव्यंजना है। अभिव्यंजना ही कला की अस्मिता है। अभिव्यंजित कला ही शाश्वतता को अधिगत करती है, यही कला लोक की प्रेरिका–पथप्रदर्शिका भी बनती है। कबीर कोई कलाबाज (चमत्कारी कवि–कलाकार) नहीं थे, प्रदर्शन न तो उन्हें प्रिय था और न वे समाज के लिए ही उसे मंगलकारी मानते थे। इसलिए उन्होंने अपनी सहज साधु बानी में अपने अन्तस् के सहज–सरल उद्‌गारों को बिना किसी बनाव ठनाव के कह दिया है। तथापि इस सहजता की स्थिति में भी लय है और गहन प्रभावमयता भी। चूंकि कबीर का काव्य ईश्वराधन था, उनका काव्य व्यक्ति व्यक्ति के भेद की निर्मूलित करके प्रेमाधारित समाज की रचना था, इसलिए उन्होंने अपने भावोद्‌गारों को व्यक्त किया। कबीर की साधना नितान्त एकान्तिक आत्मनिष्ठ नहीं थी, वह समाजोन्मुखी थी, सम्प्रेषणोन्मुखी थी। कबीर की वानियों का उद्देश्य सम्प्रेषण था। सम्प्रेषण इसलिए, क्योंकि वह अपने उपदेश को जनसामान्य तक पहुंचाना चाहते थे।

कीवर्ड– कबीर, भाषा, काव्य शिल्प, शब्दावली।

Introduction

कबीर की भाषा में वे सभी गुण मिलते हैं जो एक सरल और समृद्ध भाषा के लिए अपेक्षित हैं। कबीर अशिक्षित थे लेकिन उनकी भाषा किसी भी समर्थ और महाकवि की भाषा का मुकाबुला कर सकती। कबीर की रचनाओं का काव्य शिल्प और शिल्प सौंदर्य सौंदर्य यहाँ शांत रस का परिपाक हमें दिखाई देता है। यह साखियाँ, दोहा छंद में रची गई हैं। इनकी भाषा सुधक्कड़ी है जिसमें पंजाबी, राजस्थानी मिश्रित खड़ी बोली का रूप देखने के मिलता है। इसके अलावा उलटबांसी के मूल निहित जो मूल आशय है उसे भी समझने की जरूरत है। इस उलटबांसियों को आगे इकाई में विस्तार रूप से समझेंगे।

कबीर के काव्य शिल्प के बारे में इस अध्याय में जान लेंगे। इस इकाई को पढ़ने के बाद हम उस समय किस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया करते थे और किस प्रकार की भाषा शैली के बारे में विस्तृत रूप में जानेंगे। कबीर की रचनाओं में प्रयुक्त किये गये शब्दों के बारे में कबीर का प्रतीक विधान के बारे में, अलंकारों के बारे में संगीतात्मकता के बारे में भी सोदाहरण रूप में जानकारी प्राप्त कर पायेंगे। भाषा भावों को प्रकट करने का साधना है। यदि भाव साध्य है तो भाषा साधना है। साध्य की उपयुक्त तभी संभव है जब साधन भी उसके अनुरूप हो। इसी प्रकार भावों की गरिमा तभी प्रकट हो सकती है जब उस महिमा को वहन करने की पूर्ण शक्ति भाषा में हो। अन्यथा भाव चाहे

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

जितने उदात्त हो, यदि उनके अनुरूप भाषा का प्रयोग नहीं है तो भावों के औदात्य अत्यधिक क्षति पहुँचती है। वरन वह कहानी भी अनुचित न होगा कि वह औदात्य नष्टप्राय हो जाता है। इसीलिए भावों को अनुरूप ही भाषा–प्रयोग नितांत अनिवार्य है। कबीर की भाषा में भावानुरूपिणी माना जाता है। यह भाषा का सर्वोत्तम गुण है। भाषा पर कबीर का जबरदस्त अधिकार था। वे वाणी के अधिकार थे। जिस बात को उन्होंने जिस रूप में प्रकट करना चाहता है, उसे उसी रूप में भाषा से कहलवा लिया है। कबीर की भाषा अपभ्रंश थी। कबीर की रचनाओं में प्रयुक्त भाषा शैली के बारे में, शब्दों के प्रयोग, अलंकार योजना, छंद आदि के बारे में आगे पढ़ेंगे।

कला की चरम परिणति का नाम अभिव्यंजना है। अभिव्यंजना ही कला की अस्मिता है। अभिव्यंजित कला ही शाश्वतता को अधिगत करती है, यही कला लोक की प्रेरिका–पथप्रदर्शिका भी बनती है। कबीर कोई कलाबाज (चमत्कारी कवि–कलाकार) नहीं थे, प्रदर्शन न तो उन्हें प्रिय था और न वे समाज के लिए ही उसे मंगलकारी मानते थे। इसलिए उन्होंने अपनी सहज साध बानी में अपने अन्तस के सहज–सरल उद्गारों को बिना किसी बनाव ठनाव के कह दिया है। तथापि इस सहजता की स्थिति में भी लय है और गहन प्रभावमयता भी। चूंकि कबीर का काव्य ईश्वराधन था, उनका काव्य व्यक्ति–व्यक्ति के भेद की निर्मूलित करके प्रेमाधारित समाज की रचना था, इसलिए उन्होंने अपने भावोद्गारों को व्यक्त किया। कबीर की साधना नितान्त एकान्तिक आत्मनिष्ठ नहीं थी, वह समाजोन्मुखी थी, सम्प्रेषणोन्मुखी थी। कबीर की वानियों का उद्देश्य सम्प्रेषण था। सम्प्रेषण इसलिए, क्योंकि वह अपने उपदेश को जनसामान्य तक पहुँचाना चाहते थे। इस कामना से उनकी बानियों में अनायास भाषा विश्लेषण इस प्रकार किया जा सकता है–

कबीर की भाषा में प्रयुक्त शब्दावली– जैसे व्यक्ति–व्यक्ति से समाज स्वरूपित होता है, वैसे ही शब्द शब्द से भाषा भी स्वरूपित होती है। कबीर की काव्य भाषा की शब्दावली संस ति का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों में किया जा सकता है –

1. पौराणिक शब्दावली– कबीर ने अपनी प्रस्तुति को प्रबल तथा प्रस्फुट बनाने के लिए अनेक पौराणिक शब्दावली का प्रयोग अनेक सन्र्दभों में किया है। कबीरदास ने राम, शिव, सनकादिक, नारद, सनक, ध्रुव, प्रहलाद, विभीषण, शेष, शुक्र, गोरख, भर्त हरि, गोपीचन्द, रहीम, केशव, आदम, कुबेर, कष्ण, गणेश, नारद, सुदामा, हनुमान, काली, दुर्गा, पार्वती, राधा आदि अनेक पौराणिक शब्दों नामी स्थानों का प्रयोग करके भाषा के सारक तिक पक्ष को व्यंजित किया है।

2. प्राकृतिक शब्दावली– कबीर द्वारा प्रयुक्त प्राकृतिक शब्दावली के अन्तर्गत स्थलीय, जलीय, पवनीय, पावकीय, आकाशीय आदि समस्त प्रक ति रूप संलक्ष्य है। कबीर ने जीव जन्तुओं में मछली, मेंढक, मगर, कछुआ, सिंह भीता, हाथी, शूकर, बन्दर, गाय, बैल, भैसा, कुत्ता, कौआ, चील, उल्लू, गरूड़, बगुला, हंस, मोर, कोयल, अललपक्षी, तीतर, मुर्गा, मुर्गी, सर्प, चूहा, अजगर, गोरिल्ला आदि वनस्पति जगत् के अन्तर्गत मालती यन, नीम वक्ष, आम, पीपल चन्दन, अरण्ड, बाँस, आक, सेमल आदि का, फलों में कमल, गुलाब, आदि का, पर्वतों में स्वर्ण पर्वत, मलयपर्वत आदि का, देश–ग्राम–नगर में कच्छदेश, बांगड़देश, जम्बूद्वीप, मालवादेश, मथुरा,

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

द्वारका, काशी आदि का, नदियों सरोवरों में गंगा, यमुना, गोदावरी, मानसरोवर आदि का तथा और भी अन्यान्य प्रक ति–प्रतिरूप को प्रकट शब्दायित किया है।

3. सामाजिक शब्दावली– सामाजिक शब्दावली अपनी परिधि में एक व्यापक अर्थवता को समाविष्ट किये हुए है। अस्तु, इसके अन्तर्गत वे सारे शब्द आ जाते हैं जो मानव के सामाजिक जीवन से सम्बद्ध हैं। कवीर ने सम्बन्धों की व्यंजना के लिए कंत, जननी, दुलहिनी, दूलह, सती, भर्त्तार, पति, साइयां, प्रिय, देवर, ननद, सास, ससुर आदि का, खाद्य और पेय में आमिख, दूध, दही, मेवा, पान, नारियल, मिठाई, खीर, खाँड, घ त आदि का, ग हस्थी के लिए उपयोगी वस्तुओं में चन्दन, पलंग, चौर, गागरि, चरखा, दीपक आदि का तथा अन्यान्य वस्त्राभूषणों का उल्लेख–व्यवहार किया है।
4. आर्थिक शब्दावली– आर्थिक शब्दावली के अन्तर्गत कबीर ने कृषि, व्यापार तथा आर्थिक जीवन से सम्बन्धित अन्यान्य शब्दावली का प्रयोग किया है। कतिपय विशिष्ट व्यापक व्यवह त शब्द दष्टव्य है। यह शब्द है किसान, रहट, टेक्ली, मोट, लोहारी, सोनारी, कुम्हारी, बढ़ईगीरी, बनजारा, साह, तौल, नफा, बजार आदि शब्दों के साथ व्यापाराधारित नाना जातियों (अहीर, कसाई, कोरी, जुलाहा, खेवट, गुजरी, चमार, बनिया, मालिन) का यथास्थन व्यवहार किया है। इन शब्दों के प्रयोग से उत्स समय के आर्थिक परिप्रेक्ष्य का परिचय प्राप्त हो जाता है।
5. राजनीतिक शब्दावली – कबीर की राजनीतिक शब्दावली के अन्तर्गत बादशाह (राजा), दीवान, कोतवाल, अढल, कचहरी, फौज, लश्कर, गढ़, तीर, बाण, धनुष, तलवार, बरछी, बन्दूक, तोप, गोला, युद्धक्षेत्र, यौद्धा आदि पर्याप्त शब्द देखे जा सकते हैं।
6. साधनामूलक शब्दावली – कबीर काव्य की साधना मूलक या योगपरक शब्दावली के अन्तर्गत निम्नलिखित शब्दों की गणना होती है। ये शब्द है– अजपा जाप, अनहद या अनहद नाद, अनित, सहसार, अष्टकमल, आतम, इड़ा, उनमनि, खसम, गाइत्री, ओं, पिंगला, इंगला, निरंजन, निरति, बिन्दु, सहज, सुखमन आदि। कतिपय बहुशः प्रयुक्त शब्दों का संक्षिप्त अनुशीलन इस प्रकार किया जा सकता है।

शब्दावली संयोजन और विधान के पश्चात जब हम कबीर की भाषा पर पड़ताल करते हैं तब पता चलता है कि कबीर की भाषा में अनेक प्रकार के शब्दों के अतिरिक्त अनेक भाषाओं के शब्द भी देखे जा सकते हैं। राजस्थानी, पंजाबी, उर्दू, फ़ारसी आदि। इसीलिए आचार्य शुक्ल ने कबीर की भाषा पर टिप्पणी करते हुए लिखा था कि ष्कबीर की भाषा सधुक्कडी अर्थात राजस्थानी, पंजाबी मिली खड़ी बोली है। पर रमैनी और शब्द में गाने के पद हैं। जिसमें काव्य की बीज भाषा और कहीं पूर्वी बोली का व्यवहार है।

ज्ञातव्य है कि कबीर की भाषिक रचना में अनेक प्रकार के शब्द हैं। उसमें प्रतीमाँ, अलंकारों, अप्रस्तुतों के साथ संगीतत्व और मुहावरे, लोकोक्तियों की भी विद्यमानता है। कबीर दास ने अनेक लोकोक्तियों एवं मुहावरों का कलात्मक प्रयोग करके अपनी भाषा को समद्ध किया है। कतिपय उदाहरण दृष्टत्व हैं–

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

मींजै हाथ– हाथ मींजना, पारी बाट कमजोर का सहारा लेना, बहि–बहि मयीं बिगाड डालना, मुख में पडियारेत अपमानित होना, स्वान की पूँछ गहलो भटकता हुआ, नष्ट होना आदि–आदि।

कबीर का प्रतीक विधान– किसी शब्द, संख्या, नाम, गुण या सिद्धान्त आदि के सूचक चिन्ह को प्रतीक माना जाता है। इसका अंगरेजी रूपान्तर शसिमबलश है। जिसका तात्पर्य बताते हुए कहा गया है कि प्रतीक किसी विचार, भाव या अनुभव का दृश्यया श्रव्य चिन्ह या संकेत है जो उन तथ्यों को स्पष्ट करता है जो केवल मस्तिष्क, द्वारा ही ग्रहण किये जाते हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने प्रतीक के स्वरूप को भावित करके जो लिखा है, वह नितान्त रेखांकनीय है। वे लिखते हैं कि प्रतीक से अभिप्राय किसी वस्तु की और इंगित करने वाला न तो संकेतमात्र है न उसका स्मरण दिलाने वाला कोई चित्र या प्रतिरूप है यह उसका एक जीता जागता एवं पूर्णतः क्रियाशील प्रतिनिधि है, जिस कारण इसे प्रयोग में लाने वाले को इसके ब्याज से उसके उपयुक्त सभी प्रकार के भावों को सरलतापूर्वक व्यक्त करने का पूरा अवसर मिल जाया करता है।

अस्तु, कहा जा सकता है कि प्रतीक, अलक्ष्य, अप्रस्तुत, अमूर्त के सकल आकार–प्रकार, गुण–धर्म का प्रस्तुत और मूर्त रूप है।

काव्य के अन्तर्गत प्रतीकों के व्यवहार की महत्ता निर्विवाद है क्योंकि रचनाकार प्रतीकों के माध्यम से ही जटिल, सूक्ष्म, अमूर्त अवस्थाओं को शब्दाकार प्रदान करता है। कबीर ने भी अपने अतिश्य सूक्ष्म और अनिर्वचनीय प्रभु को व्यंजित करने के लिए प्रतीकों का सहारा लिया है। उनकी कविता में प्रतीकों के निम्न रूप परिलक्षित होते हैं–

1. कबीर ने पारिभाषिक प्रतीकों का प्रयोग अपनी हठयोगिक साधना की व्यंजना के लिए किया है। सन्तों के पारिभाषिक प्रतीकों पर सिद्धों और नाथों का प्रस्फुट प्रभाव पड़ा है। इन पारिभाषिक प्रतीकों में इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना, अमीरस, कुण्डलिनी, गगन–गुफा, सजि, खसम, निरंजन, त्रिवेणी, आदि का उल्लेख किया जा सकता है।

कबीर ने गगन गुफा का प्रयोग ब्रह्मरन्ध्र के लिए किया है। कबीर की आस्था है कि जब साधना से ब्रह्मरन्ध्र उन्मीलित हो जाता है, तब अमृतरस झरने लगता है। कबीर कहते हैं–

रस गगन गुफा मैं अजर झरे।
अजपा सुमिरन जाप करै ।।

जो साधक ब्रह्मरन्ध्र तक पहुँच जाता है, वह आवागमन से मुक्त हो जाता है।

2. सांकेतिक प्रतीकों तथा उनके द्वारा संकेतिक भावों में सादृश्य के पाँच आधार–रूप, धर्म, क्रिया, स्वर, प्रभाव माने गये हैं। यहाँ यह शब्दायित करने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर की बानियों में पर्याप्त सांकेतिक प्रतीक दृष्टिगत होते हैं। सन्तों ने अम्बर, आकाश, ऊँचा टीबा, ऊँचा वृक्ष, गगन, गढ़, शिव नगरी, शुन्य आदि को शुन्य चक्र के, अनल, कोल्हू, गोरी, जोनडी, नागिनी, नारी, मछली, रॉड, अमंद आदि को कुण्डलिनी के, औंधा कुवाँ, कैवल कुवू, देहुरा, बनारस गाऊँ, भँवर गुफा आदि को ब्रह्मरन्ध्र के, अमरबेलि, घनबरषि, छाछ, नीर, पानी, महारस आदि को अमर वारूणी के, घंटा, जंत्र, झीझी, जंतर, दमामा, नटवर बाजा, मंदला, सींगी आदि को अनहद नाद के संकेतक के रूप में प्रयुक्त किया है। सांकेतिक प्रतीकों के माध्यम से कबीरदास चित्र बताते हुए लिखते हैं–

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

सरवर तटि हसणी तिसाई।
जगति बिनां हरि जल पिया न जाई ।।
पीया चाहे ती ले खग सारी, उडि न सके दोऊ पर भारी ।।
कुभलीयै ठाडी पनहारी, गुण बिन नीर भरै कैसे नारी ।।
कहै कबीर गुर एक बुधि बताई, सहज स्वभाव मिलै राम राई ।।

यहाँ पर सखर सहस्रार, हंसिनी– आत्मा, खग–कुण्डलिनी, पनिहारी– कुण्डलिनी, गुण–सुषुम्ना नाडी का संकेतक है। अस्तु, पूरे अवतरण में सांकेतिक प्रतीक है।

3. संख्याओं (एक, दो, तीन, पाँच, छः आदि) से जिन प्रतीकों की सर्जना होती है, वे संख्यामूलक प्रतीक कहलाते हैं। सन्त कबीर ने एक नारी को माया के लिए, एकै पुरूष को ब्रह्म के लिए, एकै अषिर कै के लिए, एक कुंभरा विधाता के लिए, एक आरा ब्रह्मरन्ध्र के लिए प्रयुक्त किया है।

संख्यामूलक प्रतीकों में एक के बाद कबीर ने पाँच का बड़ा व्यापक व्यवहार किया है। यह पाँच ज्ञानेन्द्रियों (हाथ, पांव, वाणी, मल तथा मूत्रद्वार), पाँच विकारों (काम, क्रोध, मद, लोभ, तथा मोह) के लिए, व्यवहत किया गया है । कबीर ने इन्हीं सन्दर्भों में पांच का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए– पंच संगी पिव पिव करे, कहै कबीर जो पंचौ मारे, आप तिरें और कूं तारे। यहाँ पंच संगी– पाँच ज्ञानेन्द्रियों के तथा पंचौ–पाँच विकारों के प्रतीक हैं।

कबीर के काव्य में छः का प्रयोग मन, तान्त्रिक षट्कर्म (मारण, उच्चाटन, स्तम्भन, वशीकरण, शांति, विदूषण), सर्वजन विदित षट्कर्म (स्नान, सन्ध्या, पूजा, तप, तर्पण, होम), योग सम्बन्धी षट्कर्म (धोति, बस्ति, नेति, त्राटक, मौलिक, कमाल आदि) सन्दर्भों में किया गया है। कबीर काव्य का प्रयोग मुख्यतः नवधा भक्ति, शरीर के नवद्वार (दो आँख, दो कान, दो नासा–विवर, मुख, मलद्वार तथा मूत्रद्वार), नौ नाडियों (इडा पिंगला, सुषुम्ना, गान्धारी, हस्तिजिवह्या, पूषा, पयस्विनी, लकुहा, अलम्बुसा), नौ गुण (शम, दम, शोच, क्षमा, आर्जव, ज्ञान, विज्ञान, आस्तिक्य) के लिए, दस का व्यवहार दस वायु (प्राण, अपान, समान, व्यान, उदान, नाग, कर्म, ककर, देवदत्त, धनंजय), शरीर के दस छिद्र (दो आँख, दो कान, नासा–विवर, मुख, मलद्वार, मुत्राधार) के लिए, बारह का द्वादशदल कमल (अनाहत चक्र) के लिए, चौदह का चौदह भुवन (भू, भुवः स्वः, महः, जनः, तपः, सत्य, अतल, सुतल, वितल, तलातल, महातल, रसातल, तथा पाताल) के लिए, सोलह का विशुद्ध चक्र तथा सोलह श्रृंगार (उबटन, स्नान, सुन्दर वस्त्र धारण, बाल सँवारना, काजल, सिंदूर, महावर, तिलक, चिबुक पर तिल, मेंहदी, सुगन्धि, आभूषण, पुष्प माला, मिस्सी, पान, होठ रचना आदि) के लिए, पच्चीस तत्वों (पांचों तत्पों की पांच–पांच प्रकृतियाँ, आकाश– काम, क्रोध, लाभ, मोह, भयः वायु– चलन, बलन, धावन, प्रसारण, संकोचन, अग्नि क्षधां तृषा, आलस, निद्रा, मैथुन जल– लार, रक्त, पसीना, मूत्र, वीर्य, पथ्वी – हाड़, मांस, त्वचा, रीम, नाडी) के लिए, चौसठ दीवा चौसठ कलाओं के लिए प्रयुक्त हुए हैं।

संख्यामूलक प्रतीकों के अन्तर्गत एक, पाँच, नौ, दस, पच्चीस आदि के लिए कबीर का श्मेरे जैसे बनिज सो कवन काजश वाला पद अवलोकनीय है। उदाहरणार्थ–

मेरे जैसे बनिज सौं कवन काज, मूल घटें सिरि बर्ध व्याज ।
नाइक एक बनिजारे पाँच, बैल पचीस कौ संग साथ।
नव बहियाँ दस गौनि आहि, कसनि बहतरि लागै ताहि ।।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

4. रूपकात्मक प्रतीक केवल रूपक अलंकार तक ही सीमित न होकर, काफी विस्तार को लिये हुए है। कबीर ने दर्शन की जटिलता को सरल बनाने के उद्देश्य से रूपकों की रचना की है। कबीर रूप की के अप्रस्तुत कार्य और परिस्थिति के सम्पूर्ण बिम्ब को उतारने में अत्यन्त सफल हुए हैं। सन्त कबीर रूपकात्मक प्रतीक की आयोजना करते हुए लिखते हैं कि –

काहे री नलिनी तूं कुमिलांनी ।
तेरै ही नालि सरोवर पांनी ॥

जल में उतपति जल में बास, जल में नलनी तोर निवास ।
ना तलि तपति न उपर आगि, तोर हेतु कहु कासनि लागि।
कहै कबीर जे उदिक समांन, ते नहीं मए हमारे जान ।।2

यहाँ पर नलिनी आत्मा, सरोबर पानी तथा जल–हरि के उपमान के रूप में आकार दार्शनिक जटिलता को बड़ी सरलता और स्पष्टता के साथ व्यंजित करने में समर्थ हुए हैं।

5. विरोधमूलक प्रतीक उक्ति चमत्कार पर आश्रित होते हैं। इन्हीं के अन्तर्गत अलटवासियाँ आती हैं। उदाहरण द्रष्टव्य है–

आंगणि बेलि अकासि फल, अण व्यावर का दूध ।
ससासींग की धुनहड़ी, रमैं बाँझ का पूत ।।1
आशय यह है कि माया उस लता के समान है जो संसार रूपी आँगन में लगी है, जिसका फल आकाश में लगता है। वह माया बिना ब्याई हुई गाय के दूध के समान है, खरगोश की सींग की ध्वनि के समान है। वह बंध्या के पुत्र की क्रीड़ा के समान है। अर्थात् ये विरूद्ध बातें हैं।

6. भावात्मक प्रतीकों के अन्तर्गत प्रेमी और प्रियतमा के प्रतीक आयेंगे। निर्गुण कवियों ने ब्रह्म को अपना पीव, प्रीतम, कंत आदि मानकर अपनी भावानात्मक समीपता व्यक्त की है। भावात्मक प्रतीक विधान के अन्तर्गत प्रणय के दोनों रूप दृष्टिगत होते हैं। इसके अन्तर्गत कहीं तो मिलन के आनन्द का महासागर तरंगयित हो रहा है और कहीं व्यथा की अपार पीर चिह को चीर रही है। कबीर की आत्मा जब उसे अपने घट के भीतर प्राप्त कर लेती है, तब उस पीव को न जाने देने के लिए कटिबद्ध हो जाती है–

अब तोहि जांन न देहू राम पियारे। ज्यों भावै त्यों होहु हमारे ।।

बहुत दिनन के बिछुरे हरि पाए। भाग बड़े घर बैठे आए ।।3

अंतः कहा जा सकता है कबीर का प्रतीक कोष बड़ा व्यापक है। उनके अधिकांश प्रतीक प्रकृति–जगत से लिये गये हैं। उनकी प्रतीक योजना पर नाथों और सिद्धों का प्रभाव है, लेकिन वह पिष्टपेषण मात्र नहीं हैं। कबीर ने अपनी प्रतीक–योजना को एक नया सन्दर्भ प्रदान किया है। उन्होंने एक–एक भाव–स्थिति के लिए कई–कई प्रतीकों का आयोजन किया है।

कबीर का अप्रस्तुत विधान– कबीर के अन्तर्गत अप्रस्तुतों की महत्ता निर्विवाद है। अप्रस्तुत उत्तम काव्य के अनिवार्य उपादान है। अप्रस्तुतों को ही उपमान की भी संज्ञा प्राप्त है। आलंकारिक योजना के मुख्य दोनों तत्वों उपमेय और उपमान में उपमान या अप्रस्तुत योजना ही मुख्य है। यह काव्य का प्राण है, कला का मूल है और कवि की कसौटी है। यही काव्य में प्रभाव उत्पन्न करती है, प्रेषणीयता

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

लाती है, सामान्य रूप से तो अप्रस्तुत–विधान का विभाजन साम्यमूलक, अतिशय मूलक, विरोधमूलक (वैषम्यमूलक) आदि रूपों में किया जाता है, लेकिन जिन अलंकारों में अप्रस्तुत को खेलने का खुलकर अवसर मिलता है, वे अलंकार अधोलिखित हैं– उपमा, रूपक, दृष्टान्त, अन्योक्ति, समासोक्ति, उत्प्रेक्षा, व्यतिरेक, उल्लेख, आन्तिमान, तदगुण, अतदगुण, विशेषोक्ति, प्रतिवस्तूपमा, लोकोक्ति, प्रतीक, विशेषोक्ति, भेदकातिशयोक्ति आदि। कतिपय प्रधान अलंकारों के परिप्रेक्ष्य में कबीर के अप्रस्तुत विधान का अनुशीलन इस प्रकार किया जा सकता है।

1. साद श्यमूलक अलंकारों में उपमा की प्रमुखता असंदिग्ध है। कबीर ने अपने अभीष्ट को प्रस्तुत स्पष्ट बनाने के लिए अप्रस्तुतों का आनयन किया है। कबीर माया को मीठी खॉड के समान बताते हुए कहते हैं –

कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खाँड ।
सतगुर की कृपा भई, नातर करती भांड ।।4

यहाँ पर उपमा के चारों अंग उपमेय, उपमान, साधारण–धर्म और वाचक शब्द विद्यमान हैं, अस्तु पूर्णोपमा है।

2. कबीर ने अपनी संधारणा और संदृष्टि को सुरेखित करने के लिए अनेक स्थलों पर रूपक अलंकार का सुन्दर प्रयोग किया है। रूपक अलंकार में उपमान उपमेय पर आरोपित रहता है। रूपकाश्रित उपमान की कतिपय छवियाँ संलक्ष्य है। सन्त कबीर का ज्ञान की आँधी वाला सांगरूपक साहित्य जगत में बहुचर्चित है। कबीर का अभिमत है कि अज्ञान के आवरण से ही ज्ञान की ज्योति का उन्मेष होता है और भक्ति का उदय भी। इस भाव–सत्य को कबीर ने छप्पर, आँधी और वर्षा की रुपक रचना के द्वारा व्यंजित करने का प्रयास किया है। वे कहते हैं कि–

संती भाई आई ग्यॉन की आँधी रे।
भ्रम की टाटी सबै उडॉणी, माया रहे न बाँधी ॥
हिति चित की है यूँनी गिरांनी, मोह बलिंडा टूटा।
त्रिस्ना छॉनि परि घर उपरि, कुबुधि का भाँडा फूटा ।।5

कबीर ने अन्यत्र भी मन के लिए मथुरा, दिल के लिए द्वारका, काया के लिए काशी तथ ब्रह्मरन्ध्र के लिए देवालयों का रूपक प्रस्तुत किया है। यथा मन मथुरा, दिल द्वारिका, काया कासी जांणि ।

3. कबीर ने अपने मत की पुष्टि के लिए अनेक दृष्टान्तों का प्रयोग किया है। सन्त कबीर ने सुन्दरी नारी की भयंकरता तथा दाहकता को उद्दिष्ट करके उसे अग्नि के दृष्टान्त के रूप में प्रस्तुत किया है। यथा –

सुन्दरि थे सूली भली, बिरला बंचे कोइ ।
लौह निहाला अगनि में, जलि बलि कोइला होइ ।।

उक्त कतिपय अलंकारों में समाहित अप्रस्तुत–विधान को लक्षित करके कहा जा सकता है कि कबीर का अलंकार विधान अनायास और आनन्दात्मक है। वह उनकी कविता पर आरोपित नहीं है। उदाहरण दे देकर सारे अलंकारों को सविस्तार समझाया जा सकता है, लेकिन इस कार्य से अनावश्यक विस्तार हो जायेगा इसलिए, इस सन्दर्भ में यही ज्ञातव्य है कि कबीर अपने अप्रस्तुतों का

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

चयन लौकिक और प्राकृतिक जगत से किया है। उन्होंने औपम्यमूलक उपमानों का प्रयोग कथ्य को उत्कर्ष प्रदान करने के लिए तथा रूपकमूलक उपमान का प्रयोग प्रतिपाद्य को विश्वसनीयता प्रदान करने के लिए किया है।

कबीर काव्य में संगीतात्मकता– साहित्य के अन्तर्गत संगीत की संस्थिति निर्विवादित है। काव्य की छन्द–बद्धता को संगीत की सत्ता से पृथक नहीं किया जा सकता है। आज जब मुक्त छन्द का व्यापक प्रचार–प्रसार है, इसमें रचित साहित्य की प्रचुरता है, तब भी उसके लयतत्व में संगीत की संस्थिति है। कविता का रूप–स्वरूप परिवर्तित हो सकता है, पर वह संगीततत्व से कदापि विरहित नहीं हो सकता, क्योंकि कविता के अन्तर्गत संगीततत्व से आशय रमणीय अर्थ के साथ स्वर को मधुरता, समरसता तथा लयात्मकता के सधात से है। इस प्रकार, संगीत के तीन उपजीव्य तत्व–नाद, छन्द, लय–अंगीकार किये जा सकते हैं।

संगीत का अगला तत्व लय है। छन्द और लय में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। आचार्य शुक्ल ने व्यंजित किया है कि छन्द वास्तव में बंधी हुई लय के भिन्न–भिन्न ढांचों का योग है जो निर्दिष्ट लम्बाई का होता है। अस्तु, संगीत के तीनों तत्वों (नाद, छन्द, लय) में लय का विशेष महत्व है। यदि कविता से लय को निकाल लिया जाये तो वह गद्य बन जायेगी। लय के परिप्रेक्ष्य में या यों कहें कि संगीततत्व के सन्दर्भ में जहाँ तक कबीर साहित्य का प्रश्न है, उस सन्दर्भ में ज्ञातव्य है कि कबीर की सभी बानियाँ छन्दबद्ध हैं। उनके छन्दों का अध्ययन करने पर अनुभव होता है कि उन्होंने अधिकतर उन्ही छन्दों का प्रयोग किया है जो उन्हें सरल या प्रभावोत्पादक प्रतीत होते थे या जो उन्हें लोक परम्परा से प्राप्त हुए थे।

कबीर ने छन्दों पर अपना अवधान केन्द्रित नहीं किया था, इस उदासीनता का कारण दृष्टिकोण की भिन्नता थी। उनका मनोरथ विश्वमानव को एक सूत्र में बाँधते हुए हरि–स्मरण करना था। फिर भी कबीर ने साखी, सबद और रमैनी का व्यवहार किया है। साखी तो दोहे का आध्यात्मिक नाम है और सबद (शब्द) तो गेय पद है। चूंकि कबीर के चेतना सम्प्रेषणोन्मुखी थी, वे अपनी बात को आसानी से लोक तक पहुँचाना चाहते थे, इसीलिए कबीर ने सारी परम्पराओं की अवमानना करते हुए लय–तत्व को बड़ी गहराई के साथ स्वीकार किया है। यहाँ यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि कबीर के श्सबदश गेय ही नहीं, अनेक रागों पर भी खरे उतरे हैं। उनका यह खरापन उनकी सांगीतिक संदृष्टि का परिचायक है। गुरूग्रन्थसाहिब में संकलित कबीर के अनेक पद अनेक रागों (सिरी, गउड़ी, आसा, गूजरी, सोरठि, घनासरी, तिलंग, सूही, विलावल रागु) में विभक्त है। यद्यपि यह वर्गीकरण कबीर के द्वारा सम्पादित नहीं हुआ है, फिर भी, संगीतात्मकता के अभाव में वर्गीकरण की यह सम्भावना नहीं की जा सकती थी।2

कबीर के काव्य रूप– कबीर की सारी रचनाओं का एक ही उद्देश्य था भवसागर से जीव की मुक्ति। वे कहते हैं –

हरि जी यह विचारिया साखी कहाँ कबीर ।
भी सागर में जीव है जे कोई पकडे तीर ॥

वैसे तो कबीर की अनन्त रचनाएँ मानी गयी हैं –

जेते पत्र बनसपति औ गंगा की रेनं ।

eISSN 2581-8996
ONLINE
THE INTERNATIONAL JOURNAL OF ADVANCED RESEARCH IN MULTIDISCIPLINARY SCIENCES (IJARMS)
A BI-ANNUAL, OPEN ACCESS, PEER REVIEWED (REFEREED) JOURNAL
Vol. 07, Special Issue 01, February 2024

पंडित विचारा का कहै कबीर कही मुख बैन ।।

कबीर बीजक लेकिन प्रामाणिक तीन्ही हैं। इन तीनों रचनाओं के आधार पर उनकी रचनाओं के निम्नलिखित काव्यरूप

दिखायी पड़ते हैं– साखी ज्ञान की आँखश हैं। वे उपदेश मूलक हैं। सबद या पद गीतात्मक हैं। ये लौकिक और पारलौकिक भावों से युक्त हैं। रमैनी में चौपाई दोहा छन्द का प्रयोग है। इसमें परमतत्व, भक्ति, संसार आदि पर विचार किया गया है । चौंतीसा का काव्यरूप बीजक में वर्तमान है कबीर बीजक में ही विप्रभतीस, चाँचर, हिंडोला, कहरा, बिरहुली, बलि आदि काव्यरूप देखे जा सकते हैं। आदिग्रन्थ में बावनी, वाद तथा भिंती काव्यरूप वर्तमान हैं। वसन्त काव्यरूप सर्वत्र देखा जा सकता है। स्पष्ट है कि कबीर दास ने लोक में प्रचलित, नाथों–सिद्धों द्वारा प्रयुक्त काव्यरूपों को ग्रहण किया है। स्पष्ट है कि कबीर दास ने लोक में प्रचलित, नाथों–सिद्धों द्वारा प्रयुक्त काव्यरूपों को ग्रहण किया है।6

निष्कर्ष– निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कबीर की बानी केवल उपदेशमूलकता के लिए ही सराहनीय नहीं है, वरन उनमें काव्यशिल्प के अनेकों उपादानों का सुन्दर तथा प्रभावशाली संयोजन देखा जा सकता है।

संदर्भ सूची–

1. http:@@kavitakosh-org@kk
2- https:@@kaavyaalaya-org@kaahe&re&nalinee
3- https:@@www-hindigrema-com@2021@05@kabir&ke&pad-html\m¾1
4- https:@@sahityapedia-com@%E0%
5- https:@@learnfromblogs-com@%E0%A4%B8%E0
6- https:@@hi-m-wikipedia-org@wiki@%E0%